International Journal of Applied Research 2017; 3(5): 162-165

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(5): 162-165
www.allresearchjournal.com
Received: 05-03-2017
Accepted: 06-04-2017

डॉ0 रामचन्द्र रजक
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

Correspondence
डॉ0 रामचन्द्र रजक
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आदिवासी संस्कृति का संकट और निर्मला पुतुल की कविता

डॉ0 रामचन्द्र रजक

आज 21वीं सदी में भी आदिवासियों के प्रति हम सभ्यजनों का व्यवहार आदिम ही है। आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न एक ओर जहाँ उनके नाम की परिभाषा से गहरा सम्बंध रखता है वहीं दूसरी ओर वह उनकी सामाजिक संरचना और जीवन–यापन के साधन–जल, जंगल, जमीन से भी जुड़ा है। उसका उद्‌गम उसकी पहचान को पुष्ट करता है, तो उसी विरासत, भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवन शैली, उस पहचान को जिन्दा रखती है। इनकी रक्षा किये बिना उसकी अस्मिता की रक्षा करने का दावा बेइमानी होगी, यदि नेहरू के शब्दों का हवाला लिखा जाए तो 'अपनी संस्कृति का उन पर थोपा न जाना' की नीति अपनाना जरूरी है। हम आज तक उन्हें सिखाने की भूमिका में ही रहे हैं, उनकी जनतांत्रिक और समतामूलक व्यवस्था से हमने कभी कुछ सीखने की कोशिश नहीं की। आज की आवश्यकता है कि अब उनसे बहुत कुछ सीखा व समझा जाये बजाय इसके कि उन पर अपनी अधकचरी संस्कृति व सभ्यता को सिखाया जाये।

किसी जाति की संस्कृति में ही उस जाति की अस्मिता छिपी हुई होती है। इसलिए हम आदिवासी अस्मिता के सकलों को ढूँढ़े, उसके पहले थोड़ा सा कुछ संस्कृति के स्वरूप को भी समझना आवश्यक मानते है। महाभारत में एक श्लोक आता है जिसमें कहा गया है कि–

''गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीभि। नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित।''[1]

अर्थात् रहस्यज्ञान की कुंजी तुम्हें बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि– ''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग ही हमारी संस्कृति है।''[2]

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है– ''कस्यापि देवस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवन व्यापारेषु सामाजिक सम्बन्धेषु वा मानवीयत्वम दृष्ट्य प्रेरणा प्रदानां तत्त दादर्शानां समष्टिरेव संस्कृतिः।'' अर्थात किसी देश की संस्कृति उन समस्त आदर्शों की समष्टि है जो मनुष्य को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करते हैं। यह मानवतावादी दृष्टि समस्त जीवन व्यापारों और सामाजिक सम्बंधों में व्याप्त रहती है।''[3] इतिहास, सामाजिक संगठन, धर्मनीति, शिक्षा दर्शन, विज्ञान, कलाएं और साहित्य आदि संस्कृति के सार्वभौम तत्व मनुष्य ने ही रचे है। ''संस्कृति हमारी वैचारिक, सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक जीवन शैली का ऐसा आईना है जिसके भीतर से गुजर कर हम खुद को देख पाते है। यह हमारे सम्पूर्ण कार्य–व्यापारों में व्याप्त है।''[4]

इस प्रकार अब हमें आदिवासी जीवन की संस्कृति के बीच उनकी अस्मिता सम्बंधी सवालों की छानबीन की जानी चाहिए। आदिवासी कौन है ? यह उसकी अस्मिता, अस्तित्व और इतिहास का प्रश्न है। इनके लिए जनजाति शब्द सर्वाधिक अनुकूल है जो कि उनकी अस्मिता को दिग्भ्रमित नहीं करता बल्कि उस द्वारा उठाये गए सवालों को प्रतिनिधित्व भी करता है।

किसी भी समाज के लिए सबसे मूल्यवान उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति ही उस समुदाय को विशेष पहचान दिलाती है तथा उसे अस्तित्व में बनाए रखती है। किसी भी समुदाय के समक्ष अस्मिता या पहचान (आइडेंटिटी) की समस्या तब उत्पन्न होती है जब उस समुदाय की सांस्कृतिक व्यवस्था के ऊपर बाह्य आक्रमण होता है तथा उस समुदाय को यह भय सताने लगता है कि उसकी पहचान अब विघटित होने वाली है।

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ पर अनेक प्रकार की संस्कृति, भाषा, प्रजाति, धर्म आदि है। इस देश के संविधान की मूल भावना विविधता में एकता को बनाए रखने के लिए कृत एवं दृढ़ संकल्प लिए हुए है। अतः प्रत्येक सांस्कृतिक समूह को यह अपेक्षा होना स्वाभाविक है कि उसकी संस्कृति भी राष्ट्रीय संस्कृति का अभिन्न अंग बने। देश आजाद हो जाने के बाद भाषाई एवं सांस्कृतिक आधार पर राज्यों के पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया और कुछ राज्य बनाये भी गए। किनतु राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया दुर्भाग्य से राजनीतिक दुराग्रह का शिकार हो गयी। देश के अनेक सांस्कृतिक क्षेत्र राज्य के रूप में मान्यता पाने में विफल हो गए। झारखण्ड, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, मयूर भंज,

गोरखालैंड, बोडोलैण्ड, तेलंगाना, नीलगिरि, दण्डकारण्य इत्यादि। झारखण्ड, उत्तरांचल एवं छत्तीसगढ़ 2000 के अन्त में राज्य के रूप का स्थान पा चुके है। जब अन्य सांस्कृतिक क्षेत्र अभी भी दूसरे राज्यों से जुड़े हुए है। जनजातीय सांस्कृतिक क्षेत्र जनजातीय संस्कृति को अपनी विरासत के रूप में संजोए हुए है। जनजातीय संस्कृति की पहचान निम्नलिखित तत्वों से किया जा सकता है–

1. प्रकृति एवं संस्कृति के बीच पारस्परिक संतुलन
2. संग्रहणशील इतिहास
3. समतामूलक समाज
4. सामूहिकता आधारित अर्थव्यवस्था
5. सहिष्णुता पर आधारित प्रकृतिवादी धर्म
6. लोकोन्मुखी कला एवं साहित्य तथा
7. आम सहमति पर आधारित जनतंत्रमूलक शासन पद्धति।''[5]

भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत भाग जनजातियों द्वारा निर्मित है। यहाँ अनेक जनजातियाँ बसती हैं जो आज भी सभ्यता से अधिक दूर है क्योंकि ये लोग अत्यधिक पिछड़े हुए है। इन्हें जनजाति, आदिवासी, गिरिजन, पहाड़ी, वन्य जाति आदि नामों से पुकारा जाता है। भारतीय संविधान में इनका नाम अनुसूचित जाति दिया गया है जबकि धुरिये ने उन्हें पिछड़े हुए हिन्दू नाम दिया है। जनजाति की सामान्य भाषा, सामान्य संस्कृति, सामान्य भू–भाग, एक नाम अन्तर्विवाह, सामान्य निषेध, आर्थिक आत्म निर्भरता, विस्तृत आकार आदि परम्परागत विशेषताएँ पायी जाती है।

जनजातीय आन्दोलन जनजातीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। जब जब जनजातियों की सांस्कृतिक पहचान संक्रमण की अवस्था से गुजरी है, वे लोग विद्रोह एवं आन्दोलन का सहारा लिए है। जनजातीय संस्कृति की पहचान जल, जमीन तथा जंगल से बनी रही है। जिस क्षेत्र में वे रहते है, उस क्षेत्र की नदियां, जंगल तथा कृषि योग्य भूमि उनकी संस्कृति के प्रतीक बन गए हैं। नदी, जंगल तथा जमीन से ही उन्हें पृथक सांस्कृतिक पहचान मिली है। लेकिन समय–समय पर विभिन्न शासकों द्वारा उनकी सांस्कृतिक पहचान को समाप्त करने का भी प्रयास किया गया। उसी प्रयास को कुचलने के लिए ये लोग विद्रोह एवं आन्दोलन का सहारा लिए हैं।

पहाड़िया अथवा मालर विद्रोह, सिंहभूम का हो विद्रोह, महान कोल विद्रोह, भूमिज विद्रोह, संथाल विद्रोह, भुइयां टिकैट का विद्रोह, सरदार लड़ाई, बिरसा आन्दोलन, भगत आन्दोलन, सफाहोर आन्दोलन, लाखे बोदरा आन्दोलन, रघुनाथ मुर्मु आन्दोलन, खरवार आन्दोलन, ईसाई आन्दोलन, झारखण्ड आन्दोलन, उड़ीसा में जनजातीय आन्दोल, आन्ध्रप्रदेश का जनजातीय विद्रोह, गुजरात में एवं मध्यप्रदेश में जनजातीय विद्रोह, महाराष्ट्र में जनजातीय विद्रोह, उत्तर प्रदेश में जनजातीय आन्दोलन, गोरखालैण्ड आन्दोलन, बोडोलैण्ड आन्दोलन, उत्तरपूर्व राज्य का जनजातीय आन्दोलन एवं जेलियामरांग आन्दोलन आदि आदिवासियों की अस्मिता व पहचान के संघर्ष करने वाले महत्वपूर्ण आन्दोलन है। इस सबके बावजूद एक पराजित समूह होते हुए भी– ''आदिवासियों ने अपनी संस्कृति, भाषा, अपने जीने की सामूहिक शैली, परम्पराओं और रीति–रिवाजों की विरासत को जिन्दा रखा। सारी प्रकृति उनकी सहचर है। उनका बोडा, जो उनका पूर्वज ही होता है, पेड़ों या चट्टानों तक ही सीमित है। उनके बोडा के लिए मन्दिर नहीं होता। वह अपने बोंडा को अपने और अपनी संतान के साथ खाने और पीने के लिए आमंत्रित करता है। 'सखुआ' के सात गाछ उनका 'सरना' होते हैं, जो पूज्य होते हैं। पूर्वजों की याद में गाड़ी गई या अगल–बगल की बड़ी चट्टानें उसका 'जाहरथान' या 'संसान' हैं। उनका धर्म उनकी जीवन शैली है, आस्था या अंध भक्ति नहीं। उनकी अपनी एक विरासत और पहचान है, जो सामूहिक जीवन–प्रणाली, समानता, स्वतंत्रता, भाई–चारे से लैस जनतंत्र तथा स्वायत्तता पर टिकी है।''[6]

कृष्णमोहन श्रीमाली का कथन है कि– ''आखेटकों, पशुचारकों और किसानों या कारीगरों तथा शिल्पियों के धार्मिक उद्दीपन बहुधा उस पर्यावरण से अलग नहीं होते जिनमें वे काम करते हैं। पर्यावरण में प्राकृतिक परिस्थितिकीय अवस्था तथा मानव निर्मित भौतिक परिवेश दोनों का समावेश होता है।''[7] दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन एक तरफ अपनी पीड़ा का व्यक्त करता है, अपने समाधान खुद ढूँढ़ने की चेष्टा करता है, वहीं प्रतिस्थापितों द्वारा उन्हें एक षड़यंत्र के तहत सभ्यता से बाहर रखने का अहसास भी कराता है।

आज प्रगति के माध्यम से समाज चाहे जिस स्तर को क्यों न प्राप्त कर लिया हो, लेकिन फिर भी यह सत्य है कि समकालीन समाजों में हमारे जनजातीय समाज आज भी जंगल के साथ अथवा अटूट रिश्ता बनाए हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उनमें से अधिकांश का निवास स्थान जंगल में या जंगलों के आस–पास है। जंगल उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा उन्हें सालभर कुछ न कुछ रोजगार देता है। जंगल और जनजाति के बीच अटूट रिश्ता है। जंगल से उनकी भौतिक संस्कृति का विकास सम्भव है। आज जहाँ समाज उपभोक्तावादी भौतिक संस्कृति की ओर बढ़ रहा है, वहीं जंगल के आस–पास पाये जाने वाले जनजातीय समुदायों की भौतिक संस्कृति जंगलों में पाए जाने वाले पदार्थों से निर्मित होती है। जनजातीय समुदायों की कुटिया, झोपड़ी तथा घरों का निर्माण जंगलों में पायी जाने वाली बांस, लकड़ी, घास–फूस, पत्ती इत्यादि से होता है। दीवार फर्श तथा छत भी लकड़ी, बाँस से बने होते है। जंगल के आस–पास के जन जातियों को खाद्य संकलन का अवसर प्रदान करता है। कंदो, साग, पत्तियाँ, फूलों, बीजों, छत्रक, मधु एवं मोम का संकलन किया जाता है। जंगल पास–पड़ोस की जनजातियों के लिए शिकार स्थल रहा है। जंगल में अनेक जंगली पक्षी तथा पशु पाये जाते हैं। शिकार करना उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। जलावन संकलन, पशुचारण एवं घास–पात का संकलन कारीगरी, स्थानांतरण कृषि, वन औषधियों की प्राप्ति वन श्रमिक के रूप में काम, लघुवन उपजों का संकलन के साथ ही साथ सामाजिक संगठनों का निर्माण में भी जंगलों का बहुमूल्य योगदान रहा है। जनजातीय समुदायों के धार्मिक संगठन में भी जंगल का अनमोल योगदान रहा है। जनजातीय गाँवों में आज भी जंगल पूजा के अवशेष के रूप में खरना की पूजा की जाती है। खरना एक जनजातीय गाँव का वह स्थान होता है जहाँ जंगल के अवशेष रूप में कुछ साल पुराने वृक्ष होता है। तथा जहाँ गाँव के सभी देवताओं का वास स्थान सामूहिक रूप से होता है। इसे जनजातीय संस्कृति में सबसे पवित्र माना जाता है।

जनजातीय समुदायों के राजनीतिक संगठन में भी जंगल अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। न्यायिक व्यवस्था में भी जनजातीय का प्रमुख स्थान जंगल ही हुआ करता है।

निर्मला पुतुल अपने लेख 'हमारा जीवन ही हमारा साहित्य है' में लिखती है– ''आज सरकार शिक्षा सम्बंधी जितने भी कार्यक्रम चला रही है, वे उन तक पहुँच नहीं पा रहे हैं। फलतः आदिवासी बहुत अशिक्षित रह गये हैं। उन्हें बहुत छला गया है।''[8] अपनी यही बात एक कविता में भी वह कहती है कि आखिर ऐसा कपटपूर्ण व्यवहार कब तक जारी रहेगा आखिर कब तक कविता में निर्मला पुतुल लिखती हैं–

''आखिर तब तक/होता रहेगा यह सब
चलती रहेगी कब तक/झूठी नौटंकी
और/स्वार्थपूर्ण राजनीति
आखिर कब तक ?''[9]

शिक्षा का स्वास्थ्य का प्रबंधन मिलना तो दूर, आज इनसे इनके रोजगार भी छीने जा रहे हैं। हमारे आदिवासी भाइयों/बहनों के

लिए उनके विकास के लिए भारत सरकार को इस बारे में गम्भीरता से सोचना चाहिए।

जनजातीय संस्कृति को समग्रता में जानने के लिए यह आवश्यक है कि जनजातियों एवं जंगल के बीच पारस्परिक एवं सहजीवी सम्बंध को समझा जाये। जनजातियों के लिए जंगल मात्रभूमि का एक टुकड़ा ही नहीं है जिसमें अनेक प्रकार के पेड़–पौधे उगे रहते हैं तथा जिनके बीच अनेक जंगली पशु स्वच्छंद रूप से विचरण करते हैं। जनजातियों के लिए जंगल माता, पिता, भाई, भगवान, सहायक इत्यादि होता है। जंगल जनजातीय समुदाय की आस्था विश्वास, कर्म, पहचान तथा संस्कृति का केन्द्र स्थल रहा है। दोनों के बीच सहस्राब्दियों से पारस्परिक सम्बंध तथा आपसी निर्भरता बनी हुई है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा दोनों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बंध पाया जाता है। दोनों के बीच सहजीवी सम्बंध बना हुआ है, क्योंकि एक के बिना दूसरे के अस्तित्व को नहीं बचाकर रखा जा सकता है। जंगल है तभी जनजातियाँ तथा उनकी संस्कृति भी है। जनजातियाँ है तभी जंगल का अस्तित्व भी बचा हुआ है। अपने अस्तित्व की पहचान बनी रहने के लिए ही पुतुल जी संघर्ष करती हुई लिखती हैं–

''आखिर वे लोग/जो हमारे भीतर
जल–जंगल–जमीन बचाने का जज्बा देखते हैं
झारखण्डी अस्मिता और देशज संस्कृति तलाशते हैं
उन्हीं की संगति ने हमारी भाषा बिगाड़ दी
और प्यास बुझाने के लिए
पेप्सी और स्प्राइट का चस्का लगा दिया।''[10]

प्राकृतिक चीजों के दोहन ने हमारे सब कामों, हमारी संस्कृति को मटियामेट करके रख दिया। इसीलिए अब बड़ी मात्रा में प्राकृतिक आपदाएँ आ रही हैं। इनके कल्याण के लिए संवैधानिक प्रावधान भी किये गये हैं। अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता से वंचित नहीं करेगा चाहे पुरुष हो या महिला। अनुच्छेद 15(3) महिलाओं और बच्चों को कुछ विशेष सुविधा प्रदान करती है। अनुच्छेद 16 लोक सेवाओं में अवसरों की समानता बिना भेदभाव के, अनुच्छेद 39(घ) में स्त्री पुरुष के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 42 महिलाओं के लिए प्रसूति सहायता तथा अनुच्छेद 51(क) स्त्री सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं का त्याग और अनुच्छेद 243(घ) पंचायती राज संस्थाओं में 73वें संशोधन के माध्यम से महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इनके कल्याण के लिए सरकारी योजनाएँ भी चलायी जाती है। ड्वाकारा योजना (1982) किशोरी बालिका योजना (1992) मातृ एवं शिशु कार्यक्रम (1992), महिला समृद्धि योजना (1993), राष्ट्रीय महिला कोष योजना (1993), इंदिरा आवास योजना (1995), बालिका संवृद्धि योजना (1999), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999), समेकित बाल विकास योजना, (2000) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (2001), जननी सुरक्षा योजना (2005), मनरेगा (2006), राजीव गाँधी सबला योजना (2010) इन सबके अतिरिक्त राज्य महिला आयोग, स्वयं सहायता समूह, महिला एवं बाल विकास की योजनाएँ, जनजाति क्षेत्र में महिला छात्रावास, छात्रवृत्ति जैसी कई योजनाएँ भी लागू की गई जिनसे जनजाति क्षेत्र में महिलाएं सामाजिक, शैक्षणिक राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से सशक्त हो सके।

वर्तमान समाज में महिलाओं को पुरुष के बराबर वैधनिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज, राज्य और राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलने से महिलाओं का सशक्तीकरण हुआ। और निर्मला पुतुल जनजातीय समाज की महिलाएं का सशक्तीकरण करने में अपनी लेखनी से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह लिखती हैं–

''एक समय/बड़े बूढ़े उसके/आने की आहट से ही
घरों में दुबक जाते थे/घर की स्त्रियाँ और
बूढ़े दुआ माँगते/हे ईश्वर!
काले नाग के दर्शन हो जायें
मगर उसके नहीं।''[10]

आदिवासी संस्कृति में ईश्वर या आत्मा नहीं, प्रकृति प्रमुख है, जिसके साथ मनुष्य जीता, पलता बढ़ता है और फिर खत्म हो जाता है। मरकर भी वह प्रकृति के विकास के लिए खाद बन जाता है। उसका कंकाल, उसकी हड्डियाँ धरती को उर्वर बनाती हैं, धरती पर कब्जा नहीं करतीं। उनकी मान्यता है कि उसका मिट्टी का अंश मिट्टी में, पानी का पानी में, ऊर्जा आग में बदल जाती है और श्वास हवा में मिल जाती है वह प्रकृति में आस्था और उसके साथ एक सहयात्री या सहभोगी की सामूहिक जीवन शैली, समानता, आजादी और भाईचारा निभाती हैं, किन्तु आदिवासी कवयित्री का कहना है कि हमारी सरकारें जब सभा में चर्चा करती तो वह भूल जाती है कि यह जो हम कर रहे हैं वह आदिवासियों की जीवन से कितना गहरा लगाव है। वे लिखती हैं–

''जल–जंगल–जमीन के मुद्दे पर
हमारी राय चाहते हैं
वही लोग बिस्लेरी की बोतलें बढ़ाते हैं
बोलते–बोलते जब प्यास लगती है सभा में।''[12]

परिवर्तन ने मानवीय रिश्तों को गहरे तौर पर प्रभावित किया है। उदारीकरण की पीठिका पर बैठी वैश्वीकरण और उससे उत्पन्न बजारीकरण और उपभोक्तावाद ने समाज के सप्रत्यय को क्षीण कर दिया है। इस संदर्भ में अरुण घोष लिखते हैं– ''उदारीकरण और वैश्वीकरण ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है। फलतः एक ऐसा वर्ग शीर्षस्थ होता जा रहा है, जो निजी हितों से आगे देख ही नहीं पाता, जो दूसरों की असुविधाओं और समस्याओं में नितान्त बेखबर है।''[13] 'इन दिनों यहाँ' शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल लिखती है–

''नहीं डरता था/मंगला भी जंगल में लकड़ियाँ काटते
उन जंगली जानवरों से/डरता है तो बस
बन्दूक या बम से/न जाने कब किधर से विस्फोट हो जाये।''[14]

उनके हित के आड़ों में उनका ही प्रायः शोषण हुआ। कल्याण करने की भावना के भीतर उनकी गलत नीयत भी देखी गयी है। कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी कविता 'मैंने आंगन में गुलाब लगाए' में कहती हैं–

''लेकिन कुछ फूल की नीयत ही ऐसी होती है
जो फूल की जगह कांटे लेकर आते हैं
शायद मेरे आंगन में लगा गुलाब भी
कुछ ऐसा ही है मेरी जिन्दगी के लिए.....।''[15]

आदिवासी स्त्रियों की अस्मिता को कैसे लूटा जा रहा है और उनके अरमानों को कैसे लूटा जा रहा है और उनके अरमानों को कैसे तोड़ा जाता, और उन्हीं के घर में ही घुसकर किस तरह बलात्कार कर उनकी इज्जत का मटियामेट किया जाता है। इसका जिक्र करते हुए 'किसी से कहा नहीं हमने' कविता में निर्मला जी लिखती हैं–

''जिसने पहनाए नहीं वस्त्र कभी
निर्वस्त्र किया वही बार–बार

बेआबरू हुए हम अरमानों की बस्तियों में
थप्पड़ जड़ा तुमने कई बार
स्वीकार नहीं करने से तुम्हारी बात
मेरे ही विस्तर पर करते रहे रोज
कइयों का बलात्कार''[16]

आज औद्योगीकरण और ध्रुवीकरण के चलते गाँव उजड़कर शहर के इर्द गिर्द केन्द्रित हो रहा है। निर्मला पुतुल 'जगमगाती रोशनियों से दूर अंधेरों से घिरा आदमी' कविता में लिखती हैं–

''अँधेरा से घिरा आदमी लगातार लड़ रहा है
अपने बाहर और भीरत के अँधेरों से
और सामने रोशनी से नहाई अट्टालिकाएं हैं
कि वर्षों से हंस रही हैं उसकी पराजय पर।''[16]

अन्ततः आदिवासियों को इस बात का ध्यान रखना होगा कि वे अपना नेतृत्व विकसित कर स्वयं अपनी विरासत को बचाएँ और अपनी संस्कृति को इतना सुदृढ़ कर लें कि दूसरे उनसे सीखने आएं, उन्हें शिक्षा देने या प्रशिक्षित करने नहीं! अन्यथा रामदयाल मुंडा के शब्दों में कहना होगा कि– ''आदिवासी सभ्यता, आदिवासी विचार, आदिवासी संस्कृति हाइजैक हो जाएगी। आदिवासियों के विचार तो रहेंगे, पर आदिवासी ही नहीं रहेगा। वह विस्थापित, कुली, मजदूर बनकर शहर–दर–शहर की खाक छानेगा, उनकी औरतें घरों में दाइयां बनकर आदिवासी सभ्यता की तारीफ करने वालों की उपभोक्तावादी चकाचौंध में कहीं गुम हो जाएंगी।''[18]

संदर्भ :

1. महाभारत, शान्तिपूर्व, 12/299/22
2. निराला, प्रतिनिधि कविताओं का सांस्कृतिक विश्लेषण, डॉ0 अहिबरन सिंह, डॉ0 राकेश वाजपेयी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, संस्करण–1999, पृ0 10
3. छान्दोग्योपनिषद, 8/4/1
4. सम्मेलन पत्रिका, भाग–100, संख्या–3, सम्पादक रामकिशोर शर्मा, इलाहाबाद, पृ0 135
5. भारतीय जनजातीय संस्कृति, गया पाण्डेय, कंसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2007, पृ0 421–422
6. आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 52–53
7. धर्म समाज और संस्कृति, कृष्ण मोहन श्रीमाली, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पुनर्मुद्रण–2011, पृ0 9
8. आदिवासी समाज और साहित्य, संपा0 रमाणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृ0 98
9. कलम को तीर होने दो, संपादक रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ0 212
10. वाक्, संपा0 सुधीश पचौरी, अंकाट, वर्ष–2012, जुलाई–दिसम्बर 2012, पृ0 143, (निर्मला पुतुल की कविताएँ)
11. वही, पृ0 226
12. वही, पृ0 215
13. हिन्दी अनुशीलन, जुलाई–दिसम्बर–2016, संपादक नरेन्द्र मिश्र, पृ0 67
14. वाक्, संपा0 सुधीश पचौरी, अंकाट, वर्ष–2012, जुलाई–दिसम्बर 2012, पृ0 217, (निर्मला पुतुल की कविताएँ)
15. वाक्, संपा0 सुधीश पचौरी, अंकाट, वर्ष–2012, जुलाई–दिसम्बर 2012, पृ0 146
16. वही, पृ0 220
17. वही, पृ0 145
18. आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 97।